

ज्ञान पीढ़ी पर कालानुक्रमिक समीक्षा

(Chronological Review on Knowledge Generation)

उच्च प्रबंधन संगठनों द्वारा ज्ञान प्रबंधन के संदर्भ में ज्ञान पीढ़ी पर विकास की प्रक्रिया के लिए प्रयास किया गया।

ज्ञान पीढ़ी पर कालानुक्रमिक समीक्षा में उच्च प्रदर्शन में प्रबन्धकों के सभी सतरों पर संगठन ज्ञान पीढ़ी को मापने का प्रयास किया जाता है। यह परिणाम का अनुमान लगाने में योगदान कर सकता है।

ज्ञान पीढ़ी के माप से परिणाम संकेत मिलता है। ज्ञान पीढ़ी की प्रक्रिया में परिणामों के साथ प्रयास किया जा सकता है। यह सहसम्बन्ध विश्लेषण चर के बीच एक सकारात्मक सहयोग इंगित करता है। प्रतिगमन मॉडल जागरूकता का पता लगाने के लिये किया जा सकता है।

ज्ञान, सदियों से दर्शन तथा ज्ञान मीमांसा का विषय रहा है। मानव मस्तिष्क में नित नये अनुभवों से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अन्धविश्वासयुक्त विश्वास (Mythbased Belief)

अन्धविश्वास व्यक्ति के विकास को अवरुद्ध कर उसे पतन के गहरे गर्त में ढकेल देते हैं। विज्ञान का सबसे पहला कार्य मानव जीवन से अन्धविश्वासों को दूर कर देना है। अन्धविश्वास तो बहुत दूर की बात है, यह तो विश्वास तक से परहेज करता है। यह कहता है कि जब तक स्वयं प्रयोग करके किसी सत्य के प्रति सन्तुष्ट न हो जाओ, तब तक उस पर विश्वास मत करो। दुर्भाग्य है कि हमारे देश की अधिकांश जनता अन्धविश्वासों पर ही सबसे अधिक निर्भर रहती है। तभी तो बड़े-बड़े सॉफ्टवेयर इन्जीनियर भी अपने विवाह में ढपेर शंखी ज्योतिषियों द्वारा निर्मित कुण्डलियों के मिलान पर आज भी विश्वास करते हैं। हमारे अधिकांश शिक्षकगण, नेता, अभिनेता तथा समाज के अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति जिनसे मार्गदर्शन की उम्मीद की जाती है, वे स्वयं जातिवाद, वर्गवाद, क्षेत्रवाद, अन्ध-धार्मिकता तथा भ्रष्टाचार आदि में लिप्त रहते हैं। एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सम्पन्न व्यक्ति में यह सब बुराइयाँ नहीं पाई जाती हैं। इसलिये इन्हें दूर करने के लिये भी विज्ञान शिक्षण आवश्यक है।

विज्ञान बाह्य प्रकृति के अध्ययन का एक प्रायोगिक ढंग है। इसके अन्तर्गत प्रकृति की घटनाओं की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है जो तथ्यों और प्रमाणों पर आधारित हो। व्यसाख्या में विश्वास का स्थान लगभग शून्य होता है। विज्ञान की खोजों का मूल ही, “क्या”, “किस प्रकार”, और “क्यों” आदि प्रश्नों में निहित है। विज्ञान का दीर्घकालीन अध्ययन करने से यही प्रश्न छात्र के व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं और वे प्रकृति और समाज की प्रत्येक घटना का विश्लेषण और व्याख्या इन्हीं प्रश्नों के माध्यम से करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इन

घटनाओं के विषय में कोई भी व्याख्या ठोस प्रमाणों के आधार पर ही स्वीकार की जाती है। उदाहरण के लिये जब आज के विद्यार्थी को यह बताया जाता है कि वर्षा इन्द्र की कृपा का फल है और यज्ञ तथा हवन के माध्यम से उसे प्रसन्न किया जा सकता है, तब विज्ञान का छात्र उसे प्रयोग की दृष्टि से देखता है। वह परीक्षण करता है और ज्यों ही वह देखता है कि प्रत्येक हवन का परिणाम वर्षा नहीं होता, वह इस तर्क को अस्वीकार कर देता है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ प्रमाणों, प्रेक्षणों और तथ्यों के अभाव में केवल विश्वासों के सहारे चली आई सभी व्याख्याएँ अपना स्थान खो बैठती हैं और केवल वे ही टिक पाती हैं जिन्हें तर्कों, तथ्यों और प्रेक्षणों के माध्यम से प्रमाणित किया जा सकता है और इस प्रकार छात्र को समाज में व्याप्त अंधविश्वासों से मुक्ति मिल जाती है।

समाज की परिस्थितियाँ जिस तेजी से बदली हैं उतनी तेजी से सामाजिक व्यवहार और सामाजिक रीति-रिवाज नहीं बदलते। वे सदैव ही कुछ वर्षों के लिये पिछड़े रहते हैं। इसलिये समाज में ऐसी बहुत-सी अनावश्यक और अनुपयुक्त बातें चलती रहती हैं जिनका अतीत में भले ही कुछ उपयोग रहा हो लेकिन आज के जीवन में जो तर्कसंगत प्रतीत नहीं होती। इस प्रकार के रीतिरिवाज सामाजिक रूढ़ियों के रूप में चलते रहते हैं। विज्ञान की प्रकृति कुछ इस प्रकार की है कि उसमें हर नये तथ्य के प्रकाश में पुरानी ने ज्ञान का भी पुनरावलोकन होता रहता है। जब भी कुछ नया तथ्य मिलता है तो उसके प्रकाश में पुरानी सभी धारणाओं को पुनः परिभाषित कर लिया जाता है। इस प्रकार वहाँ पुरातन धारणाओं का ऐतिहासिक दृष्टि के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रहता। विज्ञान के अध्ययन से छात्रों की, चिन्तन पद्धति पर इसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है तथा नियोजित प्रयासों के माध्यम से इन प्रभावों को और अधिक समृद्ध बना लिया जाता है। परिणामस्वरूप, छात्र अपने सम्पूर्ण वातावरण और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी मान्यताओं को नित नये तथ्यों के प्रकाश में परिवर्तित करते चले जायेंगे और इस प्रकार की रूढ़ियों से सदैव ही मुक्त रहेंगे।

प्रत्येक मनुष्य अपनी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप वातावरण के साथ समायोजन की प्रक्रिया में ग्राही करता है। जब वातावरण में कोई परिवर्तन नहीं होता है तब वहाँ प्रेरणा और प्रोत्साहन का कोई स्थान नहीं होता है और ऐसी स्थिति में मनुष्य प्रगति नहीं कर पाता। एक दूसरी स्थिति में जब मनुष्य के वातावरण में तो तत्व विद्यमान हों परन्तु छात्र की महत्वाकांक्षाओं के साथ उनका तालमल न बैठता हो, तब भी मनुष्य प्रगति की धारा में गतिमान नहीं रह पाता। इस प्रकार मनुष्य की प्रगति में दो प्रकार के अवरोध आते हैं, एक तो वे जो परम्परागत वातावरण की देन होते हैं तथा दूसरे वे जिनका आधार मनुष्य की चिन्तन पद्धति को माना जा सकता है। विज्ञान ने मनुष्य के वातावरण को बदलने में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है और इस दृष्टि से विज्ञान का अध्ययन और प्रगति सामाजिक विकास की तैयारी में सहायक सिद्ध होता है।

जीवन के पुरातन रीति-रिवाज और तौर-तरीकों पर जीने वाले मनुष्य की कार्यक्षमता अत्यन्त सीमित होती है। जो मनुष्य अपने लेखन के कार्य में केवल हस्तलेखन तक ही सीमित रहता है, उसकी अपेक्षा यन्त्रों का उपयोग करने वाला मनुष्य कई गुना अधिक कार्य कर सकता है। पर्यटन की दृष्टि से पुरातन विधियों की अपेक्षा आधुनिकतम उपकरणों के उपयोग ने एक ओर मनुष्य की सुविधाओं में वृद्धि की है तथा दूसरी ओर उसकी गति से अपूर्व योगदान दिया है। विज्ञान के अध्ययन से ज्यों-ज्यों वैज्ञानिक यन्त्रों के उपयोग और उनके प्रयोग में कौशल का विकास होता जायेगा त्यों-त्यों मनुष्य की कार्यक्षमता में भी वृद्धि होती जायेगी। विज्ञान के अध्ययन से छात्रों को इस तथ्य का सहज ही ज्ञान हो जाता है।

प्रजातन्त्र में सफल नागरिक के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति अफवाहों और वास्तविकता के बीच विवेकपूर्ण अन्तर कर सके, तथ्यों पर आधारित निष्कर्षों पर पहुँच सके, किसी निर्णय को पर्याप्त तथ्यों के अभाव में स्थगित कर सके, अपने साथियों के मत और विचारों का सम्मान कर सके, अपनी आलोचनाओं को शान्ति और धैर्य से सुन सके तथा तदनुरूप अपनी मान्यताओं और विचारों में आवश्यक सुधार कर सके। कोई भी निष्कर्ष विचारों के निरीक्षण तथा तथ्यों के आधार पर निकाला जाता है। यदि तथ्य पर्याप्त नहीं हैं तो नियम

प्रतिपादन को स्थगित कर दिया जाता है। विज्ञान के अध्ययन-अध्यापन में तर्क को समुचित स्थान दिया जाता है। साथ ही अपने से भिन्न दृष्टिकोण अथवा व्याख्या को समुचित सम्मान दिया जाता है।

तार्किक ज्ञान (Logical based Knowledge)

दर्शन में, विशेषकर बीसवीं शताब्दी में विश्लेषणात्मक विधि (Analytical Method) को दार्शनिक विधि के रूप में विशेष महत्व मिला है। कुछ दशकों तक तो इंग्लैंड, अमेरिका के प्रायः सभी दार्शनिक तथा अन्य देशों के कुछ दार्शनिक विश्लेषण-क्रिया तथा दार्शनिक चिन्तन को पूर्णतया एक ही मानते रहे हैं। विश्लेषण-विधि के इस महत्व के कारण इसे पाश्चात्य दर्शन के ऐतिहासिक संदर्भ में बिठाने की भी चेष्टा हुई। इस चेष्टा में प्रायः एकमत से यह कहा जाता रहा कि इस विधि के प्रयोग का आरम्भ मूर के दर्शन में हुआ है। कुछ विचारकों ने इस विधि के वर्तमान रूप का जनक मूर को ही माना है। यह ठीक है कि मूर का दार्शनिक समस्याओं से जूझने का एक अपना ढंग है, अपनी विधि में लोग विश्लेषणात्मक विधि का प्रारम्भ देखते हैं।

इस विधि का अर्थ है कि दर्शन का कार्य विज्ञान के साधारण भाषीय कथनों का रूपान्तरण एक ऐसी वैज्ञानिक तार्किक भाषा में करना है, जिससे उन कथनों में निहित अस्पष्टता एवं अनेकार्थता दूर हो और साथ-साथ ऐसे कथनों का पारस्परिक सम्बन्ध भी स्पष्ट हो।

यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह कार्य तो तार्किक अणुवाद भी करता है। रसेल ने अपनी तार्किक संरचना में साधारण सामान्य वाक्यों को अणु वाक्य एवं आण्विक वाक्य वाली भाषा में ढालने की चेष्टा की है। हाँ, तार्किक भाववाद भी तार्किक अणुवाद जैसा ही विश्लेषण करता है, किन्तु दोनों में एक बड़ा मौलिक अन्तर है। तार्किक अनुवाद में विश्लेषण का अन्तर अणु-वाक्यों में होता है जो तथ्य-निर्देश करते हैं। तार्किक भाववाद को इसमें दो बातें ऐसी दिखाई देती हैं जो उनके तार्किक भाववादी दृष्टिकोण से असंगत प्रतीत होती हैं। एक तो यह कि अणुवाक्य तथ्यों का चित्र है, अर्थात् इस स्थल पर भाषीय कथन तथा तथ्य का सम्बन्ध सूचित हो रहा है। तार्किक भाववाद के अनुसार ऐसे कथन जो भाषीय कथनों एवं तथ्य को सम्बन्धित करते हैं, छद्म कथन हैं, क्योंकि यह वाक्य 'इस अणुवाक्य से यह तथ्य चित्रित होता है' ऐसा वाक्य है जिसकी अनुभव परीक्षा सम्भव नहीं है। पुनः यदि तार्किक भाषा की प्रामाणिकता अन्ततः ऐसे अणुवाक्य पर है, जो स्वयं भाषा से इतर किसी तत्त्व पर आधृत है, तो वह भाषा पूर्णतया तार्किक भाषा नहीं है। दर्शनशास्त्र का साक्षात् सम्बन्ध तार्किक भाषा से है तथ्यों से नहीं। अतः ऐसी भाषा में तथ्य सूचक भाषा के लिये स्थान नहीं है। इस दृष्टि से तार्किक भाववाद का स्वानुभवमूलक वाक्य तार्किक अणुवाद के अणु-वाक्य से भिन्न है।

इसी कारण तार्किक भाववाद का कहना है कि दर्शनशास्त्र जिस प्रकार की भाषा में अपना कार्य कर सकता है, उस भाषा का साक्षात् सम्बन्ध तथ्यों से नहीं है। वह मात्र भाषीय उक्तियों का लक्षण तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों तक ही सीमित है। यही कारण है कि कारनैप ने स्पष्ट कहा है कि दर्शन का कार्य सीमित है, वैज्ञानिक भाषा के 'तार्किक वाक्य-विन्यास' तक।

कारनैप के अनुसार दर्शनशास्त्र का कार्य आनुभविक विज्ञान की भाषा के तार्किक विन्यास का विवरण एवं विश्लेषण है। इसका अर्थ यह हुआ कि विज्ञान की भाषा तो एक अलग भाषा हुई तथा दर्शनशास्त्र की भाषा उससे भिन्न भाषा होगी, जो वैज्ञानिक भाषा के विश्लेषण-विवरण के लिये उपयोग में आयेगी। इस दर्शन की भाषा का विवरण दर्शन अपने आप कैसे देगा? दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि विज्ञान-उदाहरणतः भौतिक की भाषा प्रथम स्तरीय भाषा है क्योंकि यह प्रकृति तथा उसके तत्वों के विषय में स्थापनायें बनाती है। इस भाषा का विवरण-विश्लेषण दर्शन करता है। विवरण-विश्लेषण की भाषा स्पष्टतः उस प्रथम स्तरीय भाषा के विषय में है अतः यही द्वितीय स्तर की भाषा है। अब प्रश्न है कि इस द्वितीय स्तर की भाषा का स्वरूप क्या होगा। इस भाषा में वाक्य कैसे बनेंगे, वाक्यों की संरचना के नियम क्या होंगे तथा एक वाक्य को दूसरे वाक्य में

रूपान्तरित करने के नियम क्या होंगे। ये सभी बातें दर्शन की भाषा से सम्बन्धित हैं। अतः यह कार्य तो दर्शन स्वयं नहीं कर सकता, इसके लिये तो एक तृतीय स्तर की भाषा की आवश्यकता होनी चाहिये।

इस आपत्ति को दो ढंग से समझा जा सकता है। एक तो यह है कि तार्किक भाववाद के अनुसार जो कुछ भी अर्थपूर्ण ढंग से कहा जा सकता है, वह तो विज्ञान कहता है। विज्ञान के बाहर जो कुछ भी कहा जाता है वह निरर्थक है। दर्शन विज्ञान की भाषा नहीं है, विज्ञान की भाषा के तार्किक विन्यास का विश्लेषण विवरण है, एक द्वितीय स्तरीय भाषा है। तो यह भी जो कुछ कहेगा वह निरर्थक होगा, क्योंकि यह विज्ञान नहीं है। इस आपत्ति का दूसरा पक्ष यह है कि दर्शन भाषा के निर्माण नियम तथा रूपान्तरण नियम आदि का कार्य तो दर्शन अपने आप नहीं कर पायेगा। उसे तो तृतीय स्तरीय भाषा की आवश्यकता होगी।

इस आपत्ति का दूसरा पक्ष सबल नहीं है। विवरण-विश्लेषण के लिये किसी तृतीय स्तर की भाषा की आवश्यकता नहीं। तार्किक भाववाद स्पष्ट कह सकता है कि इन नियमों के द्वारा कार्य करना ही तो दर्शन का कार्य है। इसे विज्ञान की भाषा का विवरण-विश्लेषण करना है तथा वह कुछ भाषीय नियमों के आधार पर ही यह करता है, वे नियम इससे बाहर नहीं हैं, इसके अंग हैं।

किन्तु इस आपत्ति का पहला बड़ा सबल है। यदि दर्शन द्वितीय स्तरीय अन्वेषण है तो यह विज्ञान नहीं है और तार्किक भाववाद की मान्यता के अनुसार अर्थपूर्ण उक्तियाँ केवल विज्ञान दे सकता है। अतः दर्शन का यह कार्य भी निरर्थक हो जायेगा।

इस आपत्ति को विटगेन्स्टीन के ट्रैक्टेट्स के विचार में समर्थन भी मिल जाता है। इस प्रकार से वहाँ विटगेन्स्टीन ने स्पष्ट कहा है कि दार्शनिक उक्तियाँ अन्ततः निरर्थक ही सिद्ध होती हैं। उनका कथन है, “My propositions are elucidations in the followings way: anyone who understands me eventually recognises them as non-sensical, when he has used them—as steps to climb up beyond them.” (He must go to speak, throw away the ladder after he has climbed up it).

तार्किक भाववाद के लिए इस आपत्ति का निराकरण अनिवार्य है, अन्यथा जिसे वे दर्शन का कार्य कह रहे हैं, अन्ततः निरर्थक ही होगा। कारनैप को इस आपत्ति के महत्व की जानकारी है। अतः वे विटगेन्स्टीन के इस विवरण निरर्थक नहीं बल्कि उपयोगी हैं।

इस आपत्ति का केन्द्र-बिन्दु इस बात पर है कि द्वितीय स्तरीय भाषा प्रथम स्तरीय भाषा से सर्वथा भिन्न है। कारनैप के अनुसार विटगेन्स्टीन के मन में भी यही बात थी जिसके कारण उन्होंने कहा कि आदर्श भाषा भी दिखाया है कि कैसे वहाँ गणितीय भाषा अपने वाक्य-विन्यास के विषय में अर्थपूर्ण ढंग से बात कर सकती है। हम यहाँ उस विवरण में तो प्रवेश नहीं कर सकते। यहाँ मात्र यही कह सकते हैं कि कारनैप ने विटगेन्स्टीन की आलोचना करते हुए यह दिखाया है कि विज्ञान की भाषा में ही उसका वाक्य-विन्यास निहित है, अतः भाषाओं की भिन्नता को पूर्ण भिन्नता या सर्वथा भिन्न कह कर अनावश्यक तूल देते हैं। गणित के विभिन्न रूपों तथा व्यवस्थाओं से सम्बन्धित नियम भी गणित के उतने ही आवश्यक अंग हैं जितना गणितीय व्यवहार एवं उनके वास्तविक आधार। उसी प्रकार विज्ञान की भाषा के तार्किक विन्यास से सम्बन्धित नियम विज्ञान तो नहीं है, किन्तु अवैज्ञानिक भी नहीं है, बल्कि वैज्ञानिक भाषा के सही अवबोध के लिये अनिवार्य हैं। इस प्रकार की भाषा की संरचना की प्रेरणा तार्किक भाववाद को गणित से ही मिली है। लेकिन इन लोगों के अनुसार वह भाषा पूर्णतया गणितीय भी नहीं हो सकती, क्योंकि इसका सम्बन्ध भौतिक, जीव विज्ञान आदि सभी विज्ञानों से है। अतः कारनैप का कहना है कि विज्ञान की भाषा के तार्किक वाक्य-विन्यास, विवरण-विश्लेषण अर्थहीन कथनों

का ढेर नहीं है, उसके विपरीत यह अर्थपूर्ण कथनों को और अधिक निश्चित तथा स्पष्ट बनाने का प्रयत्न है। यही कारण है कि कारनैप ने दर्शन को विज्ञान का तर्कशास्त्र कहा है, विज्ञान का तर्कशास्त्र अपने तार्किक वाक्य-विन्यास का निर्देश कर सकता है।

अतः स्पष्ट है कि कारनैप के अनुसार दर्शन का कार्य विज्ञान की भाषा को अधिक स्पष्ट करना है तथा उसके भाषीय कथनों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करना है। यह भी स्थापित हो गया कि यह कार्य तभी सम्पन्न हो सकता है जब इन कथनों को एक ऐसे आदर्श तार्किक भाषीय कथनों में रूपान्तरित किया जा सके जहाँ तार्किक वाक्य-विन्यास नियमों का पूर्णरूपेण पालन हुआ हो।

शिक्षा और समाज (Education and Society)

समाज का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Society)

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह केवल परिवार का ही सदस्य नहीं है, बल्कि वह परिवार के बाहर निकलकर बाह्य संसार के लोगों के साथ अपने अनुभवों को बाँटता है। प्रत्येक समाज के अपने लक्ष्य और परम्परायें होती हैं तथा उस समाज में रहने वाले सभी सदस्यों का इन परम्पराओं का पालन करना होता है। सभी समाजों की अपनी सांस्कृतिक विरासत होती है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी की ओर संप्रेषित होती रहती है। इस विरासत के संप्रेषण हेतु समाज के सदस्यों का शिक्षित होना आवश्यक है। स्कूल और घर इस सांस्कृतिक विरासत का संप्रेषण करने में सहायक बनते हैं लेकिन समाज स्वयं में शिक्षा का एक प्रभावशाली अधिकरण है। समाज का स्थायी रूप नहीं है, यह गतिशील है और निरन्तर बदलता रहता है।



समाज के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिये विद्वानों ने इसे निम्न प्रकार से परिभाषित किया है—

मैकार्डवर और पेज के अनुसार, “समाज मानव व्यवहार के नियन्त्रण और स्वतंत्रता के बहुत-से समूहों और उपखण्डों की परम्पराओं और प्राधिकार तथा पारस्परिक सहयोग की भावना की एक व्यवस्था है। इस सतत परिवर्तनशील सम्मिश्रण को हम समाज कहते हैं।”

“Society is a system of usages and procedures of authority and mutual aid, of many groups and sub-divisions, of control of human behaviours and liberties. This everchanging complex system we call society.” —MacIver and Page

मेरिस जिन्सबर्ग के अनुसार, “समाज सम्बन्धों या व्यवहारों के ढंग से व्यक्तियों का समूह है। यह उन सम्बन्धों को न बनाने वाले या व्यवहार में उनसे भिन्न अन्य लोगों से अलग कार्य करता है।”

सामाजिक संरचना (Social Structure)

समाजशास्त्र के अध्ययन में अनेक अवधारणाओं का अत्यधिक महत्व है। उनमें से एक अवधारणा सामाजिक संरचना की भी है। मानव समूह अनेक अंगों तथा उपांगों में विभाजित है। इन समस्त अंगों के योग से समाज का निर्माण होता है। समाज का अध्ययन तब तक वैज्ञानिक ढंग से नहीं किया जा सकता है जब तक कि हम सामाजिक संरचना का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से न कर लें। सामाजिक संरचना समाज को बनाने वाली विभिन्न इकाइयों की बाह्य रूप एवं सीमायें हैं जिनके अन्दर रहते हुये वे इकाइयाँ क्रियाशील बनी रहती हैं।

समाजशास्त्र में सामाजिक संरचना तथा प्रकार्य की धारणा का व्यवस्थित उल्लेख सर्वप्रथम हरबर्ट स्पेन्सर ने अपनी पुस्तक 'Principles of Sociology' में किया। दुर्खीम ने अपनी कृति 'The Rules of Sociological Method' में किया। चूँकि ये विद्वान् सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था में कोई अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाये अतः इनकी व्याख्या अधिक प्रभाव नहीं डाल पायी इसके बाद रेड्विलफ ब्राउन ने भी सामाजिक संरचना की धारणा का विवेचन किया। इसके पश्चात् जिन्होंने 'सामाजिक संरचना' की विस्तृत विवेचना की है, उनमें मर्टन (Merton), नैडेल (Nadel), मानहीम (Mannheim), पार्सन्स (Parsons) तथा मूरे के नाम प्रमुख हैं।

इन विद्वानों के विचारानुसार संक्षेप में कहा जा सकता है कि सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत एक स्थिर प्रतिमान है, जो एक 'विशेष सामाजिक जीवन' के बाहरी स्वरूप अथवा परस्पर सम्बन्धित समूहों की क्रमबद्धता को स्पष्ट करता है।

सामाजिक संरचना एक अमूर्त धारणा है, क्योंकि समाज की संरचना का निर्माण, सामाजिक सम्बन्धों, संस्थाओं, प्रतिमानों, पदों एवं भूमिकाओं से होता है और ये सभी अमूर्त हैं।

सामाजिक संरचना का अर्थ (Meaning of Social Structure)

यद्यपि 'सामाजिक संरचना' को समाजशास्त्र में केन्द्रीय अवधारणा माना गया है, तो भी इसके अर्थ और लक्षणों को लेकर आज भी मतभेद पाये जाते हैं।

समाजशास्त्र में 'सामाजिक संरचना' शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक प्रक्रियाओं के निश्चित क्रम के लिये किया जाता है 'सामाजिक संरचना' शब्द का प्रयोग अन्य मिलते-जुलते शब्दों, जैसे— 'सामाजिक संगठन', 'सामाजिक व्यवस्था', 'प्रतिमान' अथवा 'सम्पूर्ण समाज के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया जाता है, इसलिये इसका कोई एक निश्चित अर्थ देना कठिन कार्य हो जाता है। फिर भी, अधिकांश समाजशास्त्री, सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग व्यवस्थित (orderly) अर्थवा प्रतिमानित (Patterned) ढंगों के लिए करते हैं जिनसे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के समूह परस्पर एक दूसरे से अपने हैं कि इन्हें अग्रिम रूप में ही नियोजित कर लिया गया था, अपितु सामाजिक संरचना का प्रथम आधार व्यक्तियों की अन्तःक्रियाओं में दैनिक अनुकूलन तथा परिवर्तन का परिणाम है क्योंकि सामाजिक सम्बन्धों को समाज में रहने वाले व्यक्ति की क्रियाओं द्वारा परिवर्तित किया जा सकता है।

सामाजिक संरचना में व्यवस्थित प्रतिमान और स्थायित्व दो लक्षण दिखाई देते हैं। सामाजिक संरचना स्थिर इसलिये लगती है क्योंकि व्यक्तियों के आने-जाने का समूह की संरचना पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। उदाहरणार्थ—किसी गांव, नगर अथवा स्कूल या कॉलेज में व्यक्ति अथवा छात्रों के आने-जाने से इनकी सामाजिक संरचना में कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वास्तव में गांव, नगर, स्कूल अथवा कॉलेज एक संगठित समूह इसी अर्थ में है कि इनकी निश्चित संरचना बनी रहती है। पुराने छात्रों में से कुछ छात्र प्रतिवर्ष कॉलेज छोड़ जाते

हैं और कुछ नये छात्र प्रवेश लेते हैं। इसी प्रकार कुछ शिक्षक भी एक कॉलेज से दूसरे कॉलेज में चले जाते हैं, परन्तु शिक्षक और शिष्य का सम्बन्ध प्रतिमान या छात्र-छात्र सम्बन्ध प्रतिमान, कक्षा में पढ़ने की विधि और कॉलेज की अन्य गतिविधियाँ वैसी ही बनी रहती हैं। इस प्रकार किसी सम्पूर्ण समाज की विभिन्न इकाइयों को आपस में जोड़ने वाली प्रबन्ध शैली को ही सामाजिक संरचना कहा जाता है जो अपेक्षाकृत स्थायी होती है।

सामाजिक संरचना हमारे दैनिक जीवन की क्रियाओं को निर्धारित करती है अतः इसक सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों की रूप हो सकते हैं। एक ओर सामाजिक संरचना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में बन्धक है क्योंकि व्यक्ति को इसके अनुरूप काम करना पड़ता है तथा दूसरी ओर, सामाजिक संरचना में पाया जाने वाला स्थायित्व ही व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का स्त्रोत है। सामाजिक संरचना के आधार पर ही हम मानव व्यवहार के बारे में पूर्वानुमान लगा सकते हैं।

सामाजिक संरचना की परिभाषा

(Meaning and Definition of Social Structure)

पारसन्स के अनुसार, “सामाजिक संरचना परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, एजेन्सियों और सामाजिक प्रतिमानों तथा साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों तथा कार्यों की विशिष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।”

पारसन्स की इस परिभाषा से तीन बातें स्पष्ट होती हैं—

- (1) सामाजिक संरचना का निर्माण सामाजिक संस्थाओं, एजेन्सियों, प्रतिमानों एवं व्यक्तियों द्वारा ग्रहण किये गये पदों एवं भूमिकाओं रूपी इकाइयों से होता है।
- (2) ये सभी इकाइयाँ एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं।
- (3) सामाजिक संरचना में एक विशिष्ट सम्बद्धता पायी जाती है।

कार्ल मानहीम (Karl Mannheim) ने सामाजिक संरचना को परिभाषित करते हुए कहा है “सामाजिक संरचना परस्पर क्रिया करती हुई सामाजिक शक्तियों का जाल है जिससे अवलोकन और चिन्तन की विभिन्न प्रणालियों का जन्म होता है।”

यहाँ पर सामाजिक शक्तियों से मानहीम का तात्पर्य नियन्त्रण के उन साध्यानों से है जो व्यक्ति व समूह के जीवन को स्थिरता प्रदान करते हैं। ये शक्तियाँ जब क्रमबद्ध रूप से कार्य करती हैं तब इसी को हम सामाजिक शक्तियों का जाल कहते हैं।

गिन्सबर्ग (Morris Ginsberg) ने संरचना को इस प्रकार परिभाषित किया है—

“सामाजिक संरचना का सम्बन्ध सामाजिक संगठन के प्रमुख स्वरूपों अर्थात् समितियों तथा संस्थाओं और इन सबके संकुल (Complex) है।”

नैडेल (Nadel)—सामाजिक संरचना की धारणा को बहुत अधिक वैज्ञानिक रूप से प्रस्तुत किया है आपके अनुसार—

“सामाजिक संरचना अनेक अंगों की एक क्रमबद्धता को स्पष्ट करती है... यह (संरचना) तुलनात्मक रूप से यद्यपि स्थिर होती है लेकिन इसका निर्माण करने वाले अंग स्वयं परिवर्तनशील (variable) होते हैं।”

सामाजिक संरचना की विशेषताएं

(Characteristics of Social Structure)

सामाजिक संरचना को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिये यहाँ उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालना ज्यादा उपयुक्त होगा।

1. सामाजिक संरचना समाज के बाह्य स्वरूप का प्रतीक है—सामाजिक संरचना का निर्माण विभिन्न इकाइयों से होता है। ये इकाइयाँ जब एक क्रमबद्ध व्यवस्था में जुड़ जाती हैं तो एक ढांचे का निर्माण होता है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों जैसे—हाथ, पांव, नाक, कान, आँख, सिर, पेट आदि के एक व्यवस्थित क्रम में परस्पर जुड़ते हैं तो शरीर रूपी ढांचे का निर्माण होता है।

सामाजिक संरचना का सम्बन्ध समाज के क्रियाशील अंगों से नहीं है। जिस प्रकार शरीर के विभिन्न अंग जब व्यवस्थित ढंग से जुड़ जाते हैं शरीर रूपी ढांचों का निर्माण होता है जिसके बाह्य रूप को स्पष्टतः देखा जा सकता है। उसी प्रकार से समाज का निर्माण करने वाली इकाइयाँ भी क्रमबद्ध रूप से जुड़ने पर एक बाह्य ढांचे का निर्माण करती हैं, जिसे सामाजिक संरचना कहते हैं। सामाजिक संरचना का सम्बन्ध सामाजिक इकाइयों की कार्य विधि से नहीं है।

2. सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत एक स्थायी अवधारणा है—जॉनसन का यह विचार है कि सामाजिक संरचना की प्रकृति अपेक्षाकृत स्थानीय होती है। इसका मूल कारण यह है कि यदि समाज के विभिन्न अंगों में पारस्परिक सम्बन्ध अस्थायी है तो ये सामाजिक संरचना के निर्माण में अपना सहयोग, परिवर्तनशील प्रवृत्ति के कारण नहीं कर सकते हैं। अंगों में परस्पर अन्तःसम्बन्धों के अभाव का अर्थ होगा अपूर्ण संरचना। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि संरचना स्थायी तत्वों का एक प्रतिमान है।

3. सामाजिक संरचना अखण्ड इकाई नहीं है—सामाजिक संरचना ऐसी चीज नहीं है जो अपने में अखण्ड हो। इसका निर्माण अनेक छोटी-बड़ी इकाइयों से होता है। सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली भी इकाइयों की भी अपनी एक-एक अलग उपसरंचना (Sub-structure) होती है। उदाहरणार्थ परिवार, क्लब, चर्च, राज्य, परिवार आदि की अपनी-अपनी एक अलग संरचना होती है। इसी प्रकार प्रत्येक संस्था की संरचना का निर्माण भी बहुत से नियमों से होता है। सामाजिक प्रतिमानों जैसे संयुक्त परिवार, जाति व्यवस्था, विवाह और नातेदारी सम्बन्धों की भी अपनी एक पृथक् संरचना होती है। इन सभी इकाइयों की उप-संरचना को मिलाकर जिस बड़ी संरचना का निर्माण होता है उसी को हम सामाजिक संरचना कहते हैं।

4. सामाजिक संरचना अमूर्त होती है—विभिन्न समाजशास्त्रियों ने यह कहा है कि सामाजिक संरचना की एक विशेषता अमूर्तता भी है। इसमें पारस्पर्य और मैकाइवर और पेज मुख्य हैं। सामाजिक संरचना का निर्माण विभिन्न संस्थाओं, एजेन्सियों, प्रतिमानों, प्रस्थितियों एवं भूमिकाओं से मिलकर होता है। ये सभी इकाइयाँ भी अमूर्त हैं, इनका भौतिक वस्तु की भाँति कोई ठोस आकार या रूप नहीं है, अतः इनसे निर्मित सामाजिक संरचना सामाजिक संरचना भी अमूर्त होती है।

5. सामाजिक संरचना की इकाइयाँ में क्रमबद्धता पायी जाती है—सामाजिक संरचना का निर्माण मात्र इकाइयों के झुण्ड से नहीं होता है बल्कि उन इकाइयों को यथास्थान पर व्यवस्थित किया जाता है। क्रम के बिना संरचना का बनना सम्भव नहीं है जैसे यदि शरीर के विभिन्न अंगों को काटकर एक ढेर बना दिया जाये तो उसे शरीर की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। उसी प्रकार से ईट, पत्थर, सीमेण्ट, बालू के ढेर को मकान की संज्ञा नहीं दी जा सकती, परन्तु जब शरीर के विभिन्न अंग क्रम से होते हैं तो उन्हें शरीर की संज्ञा दी जाती है। उसी प्रकार ईट, पत्थर, सीमेण्ट बालू क्रम से जोड़े जाते हैं तभी उसे मकान कहा जाता है अतः हम कह सकते हैं कि सामाजिक संरचना का निर्माण तभी सम्भव है जब विभिन्न इकाइयाँ एक विशिष्ट क्रम में हों।

6. सामाजिक संरचना में स्थानीय तत्त्व का महत्त्व व प्रभाव—हम जानते हैं कि सामाजिक संरचना का निर्माण विभिन्न तत्त्वों से होता है। इन तत्त्वों की स्थानीय विशेषतायें होती हैं। इन विशेषताओं का प्रभाव समाज न होकर असमान होती है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि सामाजिक संरचनाओं की विशेषतायें सामाजिक, सांस्कृतिक कारकों का भी प्रभाव पड़ता है।

7. सामाजिक संरचना में आदर्श शून्यता—यह सोचना की सामाजिक संरचना सदैव रहती है और उसके सभी तत्व संयुक्त होकर, निरन्तर कार्य करते रहते हैं—गलत है। आधुनिक युग परिवर्तन का है। इन सबके कारण सामाजिक संरचना के नये नियम परम्परायें एवं मान्यतायें आदि निर्धारित होने लगी हैं। इससे समाज में विघटन या नियमहीनता या आदर्श शून्यता की स्थिति उत्पन्न होने लगी है। मर्टन तथा दुर्खीम का मत है कि कई बार सामाजिक संरचना स्वयं समाज में नियमहीनता पैदा करती है।

8. सामाजिक संरचना अन्तःसम्बन्धित इकाइयों का एक व्यवस्थित स्वरूप है—सामाजिक संरचना का निर्माण करने वाली विभिन्न इकाइयाँ अलग-अलग होते हुए भी परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं जैसे कार का निर्माण करने वाली इकाइयाँ अलग-अलग चीजों का निर्माण करती हैं परन्तु प्रत्येक इकाइयाँ एक दूसरे से अन्तःसम्बन्धित होती हैं। इसी प्रकार परिवार, राज्य, शिक्षण संस्थायें आदि भी अलग-अलग भूमिका करते हुए एक दूसरे से प्रभावित होती हैं तथा अन्तःसम्बन्धित होती हैं।

9. सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक उप-संरचनाओं से होता है—जिस प्रकार शरीर रूपी संरचना का निर्माण मस्तिष्क, पाचन व श्वसन संस्थानों आदि से होता है जिसमें अनेक अंग होते हैं उसी प्रकार सामाजिक संरचना का निर्माण भी विभिन्न उप-संरचनाओं, जैसे परिवार, जाति, वर्ग, चर्च, शिक्षण संस्था, आर्थिक संस्था, धार्मिक संस्था आदि के द्वारा होती है। इस प्रकार उप-संरचनायें मिलकर सामाजिक संरचना का निर्माण करती हैं जिनकी प्रत्येक की अपनी भी एक संरचना होती है।

10. सामाजिक संरचना में सामाजिक प्रक्रियायें भी महत्वपूर्ण होती हैं—सहयोगी एवं असहयोगी प्रक्रियाओं जैसे सहयोग, अनुकूलन, व्यवस्थापन, एकीकरण, आत्मीकरण, प्रतिस्पर्द्धा एवं सहयोग आदि की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि सामान्य रूप से यह समझ लिया जाता है कि सामाजिक संरचना एक स्थायी धारणा होने के कारण सामाजिक प्रक्रियाओं से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं है, लेकिन यह विचार बहुत भ्रमपूर्ण है। समाज में यदि सहयोग, संघर्ष, अनुकूलन तथा आत्मीकरण की प्रक्रिया ही नहीं होगी तो सामाजिक संरचना का निर्माण ही किस प्रकार हो सकता है वास्तव में इन प्रक्रियाओं का स्वरूप जैसा होता है उसी के अनुसार एक विशेष सामाजिक संरचना का निर्माण हो जाता है।

11. सामाजिक संरचना में विघटन के तत्व भी पाये जाते हैं—मर्टन तथा दुर्खीम का मत है कि कई बार सामाजिक संरचना स्वयं समाज में नियमहीनता पैदा करती है, सामाजिक संरचना में संगठन एवं विघटन दोनों ही पैदा करने वाले तत्व पाये जाते हैं।

12. सामाजिक संरचना में प्रत्येक इकाई का एक पूर्व निश्चित स्थान **होता है—जिस प्रकार से शरीर संरचना में हाथ, पांव, नाक, कान, आँख का एक स्थान निश्चित होता है और यदि ये सब अंग अपने निर्धारित स्थान पर नहीं होंगे तो शरीर संरचना विकृत हो जायेगी। उसी प्रकार सामाजिक संरचना में राज्य, चर्च, परिवार, विवाह, धर्म, न्याय-व्यवस्था, शिक्षण संस्था, आदि सभी का स्थान पूर्व निर्धारित है। यदि ये एक दूसरे का स्थान ग्रहण कर लें तो सामाजिक संरचना में विकृति आ जायेगी।